आर्थिक विकास का असली सच

वेद प्रकाश दूबे[1]

वर्त्तमान परिवेश में जब भी विकास की बात की जाती है तो इसका अभिप्राय आर्थिक विकास तक ही सीमित रहता है। तथा वैश्विक स्तर पर बौद्धिक जगत् में जो भी विमर्श होता है वह आर्थिक विकास की संभावनाओं को लेकर के ही होता है। विश्व के सभी राष्ट्रों का प्रमुख लक्ष्य आर्थिक विकास ही बन चुका है। हाँ, अगर विवाद भी है तो विभिन्न व्यवस्थाओं के अन्तर्गत उत्पादन की दृष्टि से उपयुक्तता को लेकर। अर्थात् समाजवादी, उन्मुक्त पूँजीवादी एव मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं के बीच चयन को लेकर।

यह अंतिम रूप से सत्य मान लिया गया है कि विकास की एक ही संभव दिशा है– वह दिशा जो पश्चिमी देशों के औद्योगिकीकरण की रही है। इसके अन्तर्गत किसी भी अर्थव्यवस्था की सक्षमता के लिए कुछ सर्वमान्य मानक मान लिए गये है। यें मानक है उत्तरोत्तर मानव श्रम एवं मस्तिष्क की जगह मशीनों एवं कम्प्यूटरों का प्रयोग तथा बाजार की प्रतिस्पर्धा में आगे निकलने की क्षमता। इन सब का लक्ष्य है ज्यादा से ज्यादा उपभोक्ता वस्तुओं का आविष्कार और इनका वृहद् पैमाने पर उत्पादन। स्वाभाविक है इसके लिए विशाल मात्रा में संसाधन के रूप में कच्चे माल एंव ऊर्जा की जरूरत होगी। और यही से इस विकास मॉडल की सीमा दिखाई देने लगती है।

इस प्रकार यदि हम आर्थिक विकास के वर्त्तमान स्वरूप का मानवीय एवं पर्यावरणीय पहलुओं से विश्लेषण करे तो कई अन्य पक्ष सामने उभर कर आते है। विकास का अभिप्राय सामान्य अर्थो में विस्तार अथवा वृद्धि से है। और आर्थिक विकास के सन्दर्भ में इसका मतलब होगा जन समुदाय के लिए उपभोक्ता वस्तुओं को उपलब्धता में वृद्धि। लेकिन इस क्रम में एक बात जो अक्सर हम भूल जाते है वह यह कि मनुष्य भौतिक पदार्थों का जनक नही है। संपूर्ण जगत् में उपलब्ध भौतिक पदार्थों की मात्राओं में वह एक अतिरिक्त छोटे से छोटे कण का भी वृद्धि नहीं कर सकता है। हाँ, वह इस आर्थिक विकास की प्रक्रिया में भौतिक पदार्थों का रूपान्तरण इस प्रकार करता है, जिससे कि वे मनुष्य के उपयोग योग्य बन पाते है। यह रूपान्तरण कुछ वैसे ही है जैसे प्राणि जगत् और वनस्पति जगत में नाना प्रकार के जीव और पेड़ पौधे करते है। पेड़ पौधे पृथ्वी से रासायनिक तत्व लेकर इन्हे पत्ते फूल और फल में बदल देते है। मधुमक्खियाँ फूलों का रस लेकर शहद बनाती है, और अत्यन्त जटिल छत्ते का निर्माण करती है। मकड़ी के जाल की खूबसूरती अपने आप में बिलक्षण है तथा इसकी बारी की और मजबूती मनुष्य द्वारा निर्मित अब तक के बारीक से बारीक धागे से श्रेष्ठ साबित हुई है। इन जालो को मकड़ी प्राप्त पोषक तत्वों को बदल अपने भीतर से पैदा करती है।

लेकिन पदार्थ के ऊपर बताये गये रूपान्तरण तथा मनुष्य के वर्त्तमान औद्योगिक विकास के क्रम में होने वाले रूपान्तरण में एक बहुत बड़ा बुनियादी अन्तर है। मनुष्य के इतर प्राणियों या वनस्पतियों द्वारा किये जाने वाले रूपान्तरण का एक ऐसा चक्र होता है जिससे पारिस्थतिकीय सन्तुलन बना रहता है। वनस्पति जगत् एवं मनुष्य से इतर प्राणि

[1] असिस्टेण्ट प्रोफेसर, ला0सि0राजकीय महिला स्नातकोतर महाविद्यालय, अदलहाट, मीरजापुर

जगत का पदार्थों पर जो निर्भरता है, वह एक पक्षीय नही है। वे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जहाँ एक तरफ पदार्थों का अवशोषण करते है, वही दूसरी तरफ किसी न किसी रूप में इसकी प्रतिपूर्ति भी करते रहते है।

मनुष्य द्वारा आर्थिक विकास के क्रम में पदार्थों का किया जाने वाला रूपान्तरण प्रायः एक पक्षीय ही होता है। वह अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पदार्थों का निर्बाध उपयोग तो करता है किन्तु उसकी प्रतिपूर्ति उस तरह नही कर पाता। जिससे रूपान्तरित होन वाले संसाधनों का त्वरित एवं अपूरणीय क्षति अनिवार्य हो जाती है। पश्चिमी दुनिया में पन्द्रहवीं शताब्दी से राष्ट्रों के अन्तराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि और अट्ठारहवीं शताब्दी से औद्योगिक क्रांति का जो दौर चला उसने प्रकृति और इतर मनुष्य के खिलाफ निर्बाध आक्रमकता को जन्म दिया है। इस औद्योगीकरण ने पश्चिमी दुनिया के देशों को इतने गहरे रूप से प्रभावित किया कि वहाँ के पूँजीवादी और समाजवादी दोनों ही तरह के विचारको के लिए यह औद्योगिक विकास हो एक मात्र लक्ष्य बन गया। औद्योगिक वस्तुओं के विशाल मात्रा में उत्पादन के लिए उसी अनुपात में विशाल मात्रा में संसाधन चाहिए, और संसाधन करे रूपान्तरित करने के लिए मानव श्रम था अन्य किसी भी तरह की ऊर्जा। औद्योगीकरण का इतिहास इन वस्तुओं की उपलब्धि के लिए तमाम गैर यूरोपीय लोगो की प्राकृतिक संपदा की लूट और उनके ऊपर अमानवीय जुल्म का इतिहास रहा है। वर्त्तमान में भी चाहे स्वतन्त्र बाजार के नाम पर हो अथवा गैट या विश्व व्यापार संगठन के नाम पर हो, औद्योगिक देशों का आपसी और बाकी दुनिया से सारा विवाद दुनिया के संसाधनों के नियंत्रण के लिए ही है।

वर्त्तमान औद्योगिक विकास के चरित्र पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसने अपने प्रसार से कई जनसमूहों को उनके जीवन निर्वाह के पारंपरिक आधार से वंचित कर उनके जीवन पद्धति को नष्ट कर दिया है। बड़े पैमाने पर बॉधों के निर्माण खनिजों के दोहन तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना ने जहाँ एक और गम्भीर पर्यावरणीय चुनौती पैदा कर रहे है वही दूसरी ओर इससे बड़ी संख्या में लोग विस्थापित हो रहे है, उनको कूड़े की ढ़ेर की तरह एक जगह से हटाकर दूसरी जगह डाल दिया जाता है। उनके पारंपरिक परिवेश के बचाने का कोई प्रयास नही किया जाता।

अतः स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि विशिष्ट पहचान रखने वाली जनजातीय एवं अन्य समूहों के जीवन पद्धति को नष्ट कर औद्योगिक ढ़ाँचा बनायेगे या औद्योगिक विकास की ऐसी नीति अपनायेगे जो उनकी जीवन पद्धति के साथ संगति बैठा सके। वे गतिविधियाँ जिसें हम आर्थिक विकास कहते है इसमें जल, जंगल, जमीन और जीवन की विविधता को नष्ट कर दिया है, साथ ही मनुष्य के लिए नये सवास्थ्य सम्बन्धी खतरे पैदा किये है। अतः यह अपेक्षित है कि वर्त्तमान विकास की प्रकृति को समझते हुए इसकी कमियों को दूर किया जाये।